जैन
पथप्रदर्शक

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)

नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

आत्मानुभूति को प्राप्त करने का प्रारंभिक उपाय तत्त्व विचार है।

- बिन्दु में सिंधु, पृष्ठ-24

वर्ष : 25, अंक : 18 | **सम्पादक :** पण्डित रतनचन्द भारिल्ल | आजीवन शुल्क : 251 रुपये
दिसम्बर (द्वितीय) 2002 | **प्रबन्ध सम्पादक :** पण्डित संजीवकुमार गोधा | वार्षिक शुल्क : 25 रुपये

गुरुदेवश्री की पुण्यतिथि पर महाविद्यालय के छात्र सोनगढ़ में

श्री अनन्तभाई शाह, मुम्बई की हार्दिक भावना के फलस्वरूप उनकी ओर से दिनांक 25 नवम्बर से 1 दिसम्बर तक श्री टोडरमल दिग. जैन सिद्धान्त महा., जयपुर के विद्यार्थियों को सोनगढ़ आमंत्रित किया गया।

सभी कार्यक्रमों में टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के ट्रस्टी ब्र. यशपालजी, मंत्री ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री, उपमंत्री पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा एवं श्री सुमनभाई दोशी का निर्देशन रहा ।

सभी विद्यार्थी जयपुर से सीधे सोनगढ़ पहुँचे, वहाँ सभी ने दोनों समय पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचनों के अतिरिक्त दोपहर में पण्डित चंदुभाई के 'गुरुदेवश्री के वचनामृत' पर हुये प्रवचनों का लाभ लिया।

अनंतभाई शाह तथा ब्र. कंचनबेन आदि अनेक बहिनों के विशेष आग्रह पर सभी विद्यार्थी उनके घर पर पधारे तथा वहाँ विद्यार्थियों द्वारा कण्ठपाठ का प्रयोग प्रदर्शित किया गया।

वहाँ से तीन पाण्डवों की निर्वाणभूमि पालीताना (शत्रुंजय) की भक्तिभावपूर्वक वंदना कर गुरुदेवश्री की जन्मभूमि उमराला ग्राम पहुँचे; जहाँ उनसे संबंधित अनेक स्थानों को देखा।

29 नवम्बर को राजकोट में प्रात: गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन के पश्चात् गुरुदेवश्री की पुण्यतिथि के निमित्त महाविद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा एक मार्मिक गोष्ठी का आयोजन किया गया; जिसमें विद्यार्थियों ने गुरुदेवश्री के सम्पूर्ण अन्तर्बाह्य जीवन पर प्रकाश डाला । मुख्य-अतिथि ब्र. यशपालजी जैन जयपुर तथा संचालक पं. प्रवीणकुमारजी शास्त्री रायपुर थे।

रात्रि में महाविद्यालय के विद्यार्थियों ने सांस्कृतिक कार्यक्रम के रूप में लघु नाटिका 'पुण्य मोक्षमार्ग या संसार' की सुन्दर प्रस्तुति की। संचालन पं. प्रवीणकुमारजी शास्त्री ने किया। नाटिका का मार्ग-निर्देशन पण्डित धर्मेन्द्रकुमारजी शास्त्री ने किया।

30 नवम्बर को प्रात: ब्र. यशपालजी के प्रवचन के पूर्व महाविद्यालय जयपुर के विद्यार्थियों ने कण्ठपाठ का प्रदर्शन किया। यह कण्ठपाठ प्रदर्शन वहाँ के लोगों के लिये एकदम नवीन तथा आश्चर्यजनक था। कार्यक्रम का संचालन पण्डित धर्मेन्द्रकुमारजी शास्त्री ने किया।

अन्त में भगवान नेमिनाथ की निर्वाणभूमि सिद्धक्षेत्र गिरनार की वंदना के साथ यह मंगल यात्रा सानन्द सम्पन्न हुई।

प्रवचनमाला सम्पन्न

होशंगाबाद (म.प्र.) : यहाँ दिनांक 1 से 4 दिसम्बर 2002 तक आध्यात्मिक संत श्री तारणस्वामी की 554वीं जन्मजयन्ती समारोह के अवसर पर स्व. श्री गुल्लेदादा की स्मृति में आध्यात्मिक प्रवचनमाला का आयोजन किया गया; जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त तार्किक विद्वान डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के दोनों समय 'भगवान आत्मा' विषय पर मार्मिक प्रवचन हुये। डॉ. भारिल्ल के प्रवचनों के पूर्व दोनों समय टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के उपमंत्री पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा के'उपदेश शुद्धसार' पर तथा दोपहर में 'नियमसार' पर प्रवचन हुये।

कार्यक्रम के अंतिम दिन तारण-तरण दिगम्बर जैन समाज तथा कुन्दकुन्दाचार्य प्रतिभा सम्मान परिवार होशंगाबाद द्वारा दोनों विद्वानों को अभिनन्दन पत्र तथा शॉल भेंट किये गये।

दोनों ही संस्थाओं ने पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट का आभार माना तथा भविष्य में पुन: पधारने का आमंत्रण दिया।

इस अवसर पर 14 हजार 600 रुपये का सत्साहित्य एवं 746 घण्टे के प्रवचनों के सी.डी एवं ऑडियो कैसिट्स घर-घर पहुँचे।

सिद्धचक्र मण्डल विधान का आयोजन

गजपंथा : यहाँ दिनांक 7 से 13 नवम्बर 2002 तक श्रीमती संजीवनी सुभाषचन्द शाह, पुणे द्वारा श्री सिद्धचक्र मण्डल विधान का आयोजन किया गया; जिसमें प्रात: नित्य-नियम पूजन के पश्चात् डॉ. उत्तमचन्दजी सिवनी के समयसार गाथा-12 पर मार्मिक प्रवचन हुये। इस अवसर पर ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री सनावद एवं डॉ. सुमतिचन्द मलकापुर के प्रवचनों का लाभ भी समाज को मिला।

विधान का उद्घाटन डॉ. किरणभाई शाह ने तथा झण्डारोहण श्री महेन्द्रभाई एवं अनिलभाई कामदार मुम्बई परिवार ने किया। विधि-विधान के सम्पूर्ण कार्य ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री, सनावद के निर्देशन में पण्डित मनीषकुमारजी शास्त्री एवं पण्डित अमरचन्दजी ग्वालियर ने सम्पन्न कराये ।

सम्पादकीय –

हरिवंशपुराण : एक अनुशीलन

20

– रतनचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे .....)

यज धातु का अर्थ देवपूजा है, इसलिए द्विजों को पूर्वोक्त धान से ही पूजा करना चाहिए। साक्षात् पशु की बात तो बहुत दूर की ही रहो, पशुरूप से कल्पित चून के पिण्ड से भी पूजा नहीं करना चाहिए; क्योंकि अशुभ संकल्प से भी भयंकर पाप होता है। जो नाम, स्थापना, द्रव्य एवं भाव निक्षेप से चार प्रकार का पशु कहा गया है, उसकी हिंसा का कभी मन में भी विचार नहीं आना चाहिए।

यह जो कहा है कि ह्न मंत्रों द्वारा होनेवाली मृत्यु से दुःख नहीं होता, वह बात सर्वथा मिथ्या है; क्योंकि यदि दुःख नहीं होता तो जिसप्रकार पहले स्वस्थ अवस्था में मृत्यु नहीं हुई थी; उसीप्रकार अब भी मृत्यु नहीं होनी चाहिए। यदि पैर बाँधे बिना और नाक मूँदे बिना अपने आप पशु मर जावे तब तो उक्त बात मानी भी जा सकती थी; परन्तु यह असंभव बात है। बध्य बंधन आदि और पशु के चीत्कार तथा आँखों से झरते आँसुओं से ही उसके दुःख का अनुमान हो जाता है कि वह कितना बेबस हैं।

अध्यात्म की आड़ लेकर जो यह कहा जाता है कि ''आत्मा तो सूक्ष्म है, वह आग में जलता नहीं, पानी में गलता नहीं, अस्त्रों-शस्त्रों से कटता नहीं'' यह कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि यह कुतर्क है। यह अध्यात्म की बात कह कर मानव हिंसा और क्रूरता के महापाप से नहीं बच सकता। उस कथन का हिंसा-अहिंसा के आचरण से कोई संबंध नहीं है।

यह निर्विवाद सिद्ध है कि संसारी जीव शरीर प्रमाण है और मंत्र-तंत्र व अस्त्र-शस्त्र से शरीर का घात होने पर जीव को नियम से दुःख होता है।

पूर्वपक्ष का यह कहना भी ठीक नहीं है कि ह्न 'जिन जीवों की यज्ञ में आहूती देने से मृत्यु होती है, याजक लोग उनके चक्षु आदि को सूर्य आदि के पास भेज देते हैं।' पर्वत ने कहा था कि ह्न होम करते ही मंत्रों द्वारा पशु को स्वर्ग भेज दिया जाता है और वहाँ वह पशु भी याजकों के समान ही कल्पकाल तक सुख भोगता है। सो प्राणियों के घातक होने से ह्न उन याजकों को भी स्वर्ग कैसे मिल सकता है? उन्हें तो धर्म के नाम पर प्राणियों के बध करने से नरक ही मिलना चाहिए। और भी पर्वत ने जितने तर्क-कुतर्क अपनी मिथ्यामान्यता के पोषण में दिए, नारद ने उन सभी का सुयुक्तियों द्वारा खण्डन कर दिया और अपने पक्ष को प्रबल युक्तियों द्वारा स्थापित किया। सभा में उपस्थित जनसाधारण ने भी नारद के पक्ष का अनुमोदन करते हुए करतलध्वनि से सभा भवन को गुंजायमान करते हुए नारद को बारम्बार धन्यवाद दिया।

तदनन्तर अनेक शास्त्रों के ज्ञाता शिष्टजनों ने अन्तरिक्षचारी राजा वसु से पूछा ह्न हे राजन्! आप गुरु के द्वारा सुने हुए सत्य अर्थ को कहें। आपने भी तो उन्हीं गुरु से पढ़ा है, जिनसे इन्होंने पढ़ा। आप भी तो इनके सहपाठी रहे हैं। अतः निष्पक्ष, और सत्य निर्णय देकर 'दूध का दूध और पानी का पानी' कहावत को सत्य चरितार्थ करें।

यद्यपि राजा वसु दृढ़बुद्धि था और गुरु के वचनों का उसे भलीभाँति स्मरण था, तथापि मोहवश सत्य का अपलाप करते हुए उसने कहा ह्न

'हे सभाजनों! यद्यपि नारद ने युक्तियुक्त कहा है, तथापि पर्वत ने जो कहा वही उपाध्याय का भी मत था।' इतना कहते ही पृथ्वी फट गई और राजा वसु का स्फटिक मणिमय आसन पृथ्वी में धंस गया। मानो पृथ्वी भी राजावसु के मिथ्या-भाषण को सह नहीं सकी; क्योंकि वसु के थोड़े से मोह ने जो मिथ्यामान्यता की पुष्टि की, उसका दुष्फल बिचारे पशु आजतक भुगत रहे हैं और न जाने आगे कब तक यह मिथ्यामान्यता चलती रहेगी और धर्म के नाम पर पशु होम में झोंके जाते रहेंगे। यह भयंकर पाप था; जिसके परिणाम स्वरूप राजा वसु सिंहासन के जमीन में धँसते मृत्यु को प्राप्त कर सातवें नरक में गया।

हिंसानन्द और मृषानन्द रौद्रध्यान से कलुषित हो, राजा बसु भयंकर नरक में गया। सो ठीक ही है; क्योंकि रौद्रध्यान दुःखदायक ही होता है जिसे ऐसे नरकों में नहीं जाना हो, वे वसु की भाँति मोह में न पड़ें और रौद्रध्यान न करें।

यहाँ पाठकों को प्रस्तुत पुराण द्वारा यह संदेश है कि कोई भी संसारी संज्ञी प्राणी ध्यान के बिना तो रहता नहीं है और मिथ्यात्व की भूमिका में धर्मध्यान किसी को होता नहीं है, इस कारण उनको या तो आर्तध्यान होता रहता है या रौद्रध्यान! आर्तध्यान दुःखरूप ही होता है। इसके मुख्यतः चार भेद हैं ह्न (1) इष्ट वियोग (2) अनिष्ट संयोग (3) पीड़ा चिन्तन और (4) निदान। जगत में जो वस्तु या व्यक्ति सुखदायक प्रतीत होता है, वह इष्ट लगता है, प्रिय लगता, भला लगता है और जो दुःखदायक प्रतीत होता है, वह अनिष्ट लगता है, बुरा लगता है अप्रिय लगता है। जो इष्ट लगता है उसके वियोग में दुःखी होना ह्न यह इष्ट वियोगज आर्तध्यान है। जो अनिष्ट लगता है, उसके संयोग में दुःखी होना ह्न यह अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान है। पीड़ा दो तरह से होती है ह्न एक मानसिक, दूसरी शारीरिक। असारता कर्म के उदयानुसार दोनों तरह की पीड़ा होती है, उसमें दुःखी रहना पीड़ा चिन्तन आर्तध्यान है तथा थोड़ा-बहुत बाह्य धर्माचरण करके उसके फल में लौकिक विषयों की कामना होना निदान आर्तध्यान है ह्न अज्ञानी जीव चौबीसों घंटे इसी में उलझा रहता है और इसके परिणाम स्वरूप उसे तिर्यंचगति की प्राप्ति होती है।

यदि हमें पशु पर्याय पसंद न हो, एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय में जन्म-मरण करना और अनन्त दुःख भोगना पसंद न हो तो तत्त्वज्ञान के अभ्यास से पर पदार्थों में इष्टानिष्ट की मिथ्याकल्पना का त्याग आवश्यक है; अन्यथा हम इस आर्तध्यान से नहीं बच सकेंगे ।

इसीप्रकार मुख्यतः मिथ्यात्व की भूमिका में ही रौद्रध्यान होता है ह्न वह रौद्रध्यान भी चार प्रकार का है। (1) हिंसानन्दी रौद्रध्यान (2) मृषानन्दी रौद्रध्यान (3) चौर्यानन्दी रौद्रध्यान (4) परिग्रहानन्दी रौद्रध्यान। यह रौद्रध्यान आनन्द रूप होता है। इसके फल में जीव नरक में जाता है। जैसे कि राजा वसु ने मोहवश 'अज' शब्द का मिथ्या अर्थ प्रचारित करके हिंसा की परम्परा को तो प्रश्रय दिया ही, झूठ भी बोला और पर्वत का पक्ष लेकर हिंसा एवं झूठ को बढ़ावा देकर मन ही मन आनन्दित भी हुआ। परिणामस्वरूप सातवें नरक गया।[1] **(क्रमशः)**

1. इन आर्त-रौद्रध्यान को विस्तार से समझने के लिए लेखक की लोकप्रिय कृति' इन भावों का फल क्या होगा' को अवश्य पढ़ें।

कहान-संदेश

धर्मी की मंगल भावना

3

इस अनादिकालीन अविवेक के नाटक में अर्थात् चैतन्यप्रभु आत्मा एवं राग की एकता के नाटक में पुद्गल ही नाचता है, ज्ञायक प्रभु तो ज्ञायकरूप ही रहा है। वर्णादि में पुद्गल नाचता है, राग में पुद्गल ही नाचता है, अभेद ज्ञान में पुद्गल ही अनेक प्रकार का दिखाई देता है। जीव तो अभेद एकाकार है। इसीलिए वर्णादि-रागादि पुद्गल ही हैं।

श्री समयसार की गाथा 109-112 में कहते हैं कि ह्न हे ज्ञान के इच्छुक पुरुष! सुन! जो मिथ्यात्वादि भावकर्म हैं, उसका कर्ता एक पुद्गल द्रव्य ही है, जीव उसका कर्ता नहीं है। मिथ्यात्व से लेकर सयोगकेवली तक के तेरह गुणस्थानभेद जो कि पुद्गल कर्म के विपाक के प्रकार होने से अत्यन्त अचेतन हैं, वे ही व्याप्य-व्यापक भाव से मिथ्यात्वादि भावकर्म को यदि करते हैं तो भले करो! जीव को उसमें क्या आया? जीव तो अकेला शुद्ध ज्ञानान्दमय है। अहाहा! जिस जीव को आत्मा की जिज्ञासा हुई है और श्रवण करने आया है उसे अभी अल्पकाल मिथ्यात्वादि भाव भले ही हों; किन्तु वह शुद्ध जीव का लक्ष्य करेगा ही, तब मिथ्यात्वादि सब भाव अल्पकाल में हट जायेंगे; इसलिये मिथ्यात्वादि भावों का कर्ता पुद्गल है, शुद्ध जीव कर्ता नहीं है।

हे योगी! देह में परमात्मा का निवास होने पर भी इस देह में स्थित परमात्मा को तू क्यों नहीं देखता? उस परमात्मा के दर्शन से तेरे पूर्वोपार्जित कर्म चूर-चूर हो जायेंगे और तू निर्वाण को प्राप्त होगा। महान पुरुष मिलने आया हो और सामान्य बालक आदि के साथ बातें करने में लग जाये तो वह महापुरुष का ही अपमान है; उसीप्रकार तीनलोक का उत्कृष्ट तत्त्व ऐसा निज परमात्मा देह में विद्यमान होने पर भी उसे तू देखता नहीं है और पर-प्रपंच की जानकारी में पड़कर निज परमात्मा का ही अपमान कर रहा है।

क्रमबद्धपर्याय के सिद्धांत से मुख्यत: तो अकर्तृत्व सिद्ध करना है, जैनदर्शन अकर्तावादी है। आत्मा परद्रव्य का तो कर्ता है ही नहीं, राग का भी कर्ता नहीं और पर्याय का भी नहीं है। पर्याय, पर्याय के जन्मक्षण में षट्कारक से स्वतंत्र जो होना है वही होती है; किन्तु उस क्रमबद्ध का निर्णय पर्याय के लक्ष्य से नहीं होता। क्रमबद्ध का निर्णय करते हुए वहाँ शुद्ध चैतन्य ज्ञायकधातु पर दृष्टि जाती है, तब ज्ञाता की जो पर्याय प्रगट होती है वही क्रमबद्धपर्याय को जानती है। क्रमबद्धपर्याय का निर्णय स्वभावोन्मुखता के अनंत पुरुषार्थपूर्वक होता है। क्रमबद्धपर्याय के निर्णय का तात्पर्य वीतरागता है, वह वीतरागता पर्याय में तब प्रगट होती है जब वीतराग स्वभाव पर दृष्टि जाती है। श्री समयसार गाथा 320 में कहा है ना! कि ज्ञान बंध-मोक्ष को नहीं करता; किन्तु जानता ही है। अहाहा! मोक्ष को जानता है, मोक्ष को करता है - ऐसा नहीं कहा है। अपने होनेवाले क्रमानुसार परिणामों को करता है ऐसा नहीं; किन्तु जानता है - ऐसा कहा है।

एक विचार आया कि तीर्थंकर जैसों को माता के गर्भ में आना पड़े, सवा नौ महीने तक पेट में सिकुड़कर रहना पड़े, जन्म लेना पड़े! अहाहा! इन्द्र जिसकी सेवा करने आते हैं ऐसे तीर्थंकर की यह स्थिति! वाह रे संसार! यह क्या है ?..वैराग्य...वैराग्य.. सर्वोत्कृष्ट पुण्य के स्वामी ऐसे तीर्थंकर को भी माता के पेट में रहना पड़े! अहाहा! संसार की अंतिम स्थिति की बात है। अरेरे! प्रभु! ऐसा संसार! संसार की ऐसी स्थिति विचारने पर आँख से आँसू बहने लगते हैं! जन्म लेने जैसा नहीं है। तीर्थंकर जैसे गोत्रकर्म को भी विषवृक्ष कहा है और जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बँधता है वह भाव भी विष है ह्न विषकुम्भ है। तीर्थंकर के अवतार को विष का फल तो तीर्थंकर ही कर सकते हैं। विष के फल में से विष झरता है और अमृत के फल से अमृत झरता है। अहाहा ! तीर्थंकर की तो जाति ही भिन्न है; तथापि तीर्थंकर जैसों की यह स्थिति है; इसलिये जन्म लेने जैसा नहीं है।

अरे भाई! तू विचार तो कर कि तू कौन है? तू ज्ञानस्वरूप है। जो हो उसे जान! तू कर्त्ता नहीं, ज्ञाता है। क्रमबद्ध का विचार करे तो सब झगड़े मिट जाये। स्वयं परद्रव्य का कर्त्ता तो नहीं है, राग का कर्त्ता तो नहीं है एवं निर्मल पर्याय का भी कर्त्ता नहीं है; वह तो अकर्त्ता स्वरूप है। ज्ञातास्वभाव की ओर ढल जाने में ही अकर्तृत्व का महान पुरुषार्थ है। वास्तव में पर्याय को द्रव्योन्मुख करना यह एक ही मुख्य वस्तु है, यही वास्तविक जैनदर्शन है। अहाहा ! जैनदर्शन बहुत कठिन; किन्तु अपूर्व है और उसका फल महान है। सिद्धगति उसका फल है। पर का या राग का कर्त्ता तो नहीं ही है; अपितु निर्मल पर्याय का भी अकर्त्ता है; क्योंकि पर्याय अपने षट्कारक से स्वतंत्र परिणमित होती है, उसमें भाव नाम की एक शक्ति है, उसके कारण पर्याय होती ही है, करूँ तो होती है ऐसा नहीं है। अहाहा! भाई! मार्ग कठिन है, अचिन्त्य है, अगम्य है, अगम्य को गम्य बना दे ऐसा अपूर्व मार्ग है। पर्याय क्रमानुसार होती है, द्रव्य-गुण भी उसके कर्त्ता नहीं हैं ह्न ऐसा कहकर अकेली सर्वज्ञता सिद्ध की है। अकर्त्तापना अर्थात् ज्ञातापना सिद्ध किया है।

शुद्ध निश्चयनय से मोक्ष में और संसार में अन्तर नहीं है। अहाहा! कहाँ तो पूर्णानन्द की प्रगटतारूप मुक्त दशा और कहाँ अनंत दु:खमय संसार पर्याय; तथापि उस मुक्ति में और संसार में अन्तर नहीं है; क्योंकि संसार भी पर्याय है और मोक्ष भी पर्याय है, वह पर्याय चूँकि आश्रय करने योग्य नहीं है, इस अपेक्षा से मोक्ष में और संसार में अन्तर नहीं है - ऐसा शुद्ध तत्त्व के रसिक पुरुष अर्थात् शुद्धतत्त्व के अनुभवी पुरुष कहते हैं।

नियमसार गाथा 50 में कहते हैं कि शुद्ध निश्चय के बल से उदयभाव तो हेय हैं ही; किन्तु उपशमादि भावों की निर्मल पर्यायें भी हेय हैं। शुद्ध निश्चय के बल से चारों भाव हेय हैं - ऐसा कहा है। यहाँ कहते हैं कि मोक्ष में और संसार में अन्तर नहीं है - ऐसा जानना चाहिये।

जैसे माला में मोती जिस स्थान पर हैं उसी स्थान पर हैं, आगे-पीछे हो जायें तो माला अखण्ड नहीं रहती; उसीप्रकार जिस समय जिस जन्मक्षण में जो पर्याय क्रमबद्ध होना है वही होगी, दूसरे समय की पर्याय पहले हो और पहले समय की पर्याय बाद में हो - ऐसा है ही नहीं। जिस समय जो पर्याय होना है, उसे काललब्धि कहा जाता है। प्रवचनसार में उसे जन्मक्षण कहते हैं तथा प्रवचनसार की 99 वीं गाथा में अपने-अपने अवसर में पर्याय होती है - ऐसा पाठ है। सर्वज्ञ भगवान भी अपनी क्रमशः जो पर्याय होना है, उसके कर्त्ता नहीं हैं, मात्र ज्ञाता ही हैं।

पधारिये .. !

!! श्री म

श्री गोपाचल सिद्धक्षेत्र के अंचल में स्थि

श्री १००८ आदिनाथ दि. जिनबिम्ब

(सोमवार, दिनांक 13 जनवरी से

कार्यक्रम स्थल : अयोध्या नगरी,

कार्यालय – श्री दिगम्बर जैन त्रिभुवन तिलक सीमंधर जिनालय (फालके का बाड़ा

अत्यन्त आनन्द एवं उल्लास के साथ सूचित करते हैं कि ग्वालियर नगर (म.प्र.) में श्री 1008 आदिना
अवसर पर विदेहक्षेत्र में जीवन्त विराजमान 1008 श्री सीमंधर भगवान की श्वेत धवल पाषाण की सुन्दर
किया जायेगा। आपसे विनम्र अनुरोध है कि दिगम्बर जैनधर्म के इस लोकोत्तर महायज्ञ में निज कल्याणार्थ

विद्वत्समागम

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, जयपुर
डॉ. उत्तमचन्दजी जैन, सिवनी
पण्डित विमलचन्दजी झांझरी, उज्जैन
पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल, जयपुर
पण्डित कपूरचन्दजी, 'कौशल'
पण्डित प्रदीपकुमारजी झांझरी, उज्जैन
पण्डित वीरेन्द्रकुमारजी, आगरा
पण्डित प्रकाशचन्दजी ज्योतिर्विद
पण्डित अनिलजी भिण्ड

प्रतिष्ठाचार्य

ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री, सनावद

सह-प्रतिष्ठाचार्य

पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री
पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील
पण्डित ऋषभकुमारजी, छिन्दवाड़ा
पण्डित सुकुमालजी झांझरी, उज्जैन
पण्डित मनीषजी शास्त्री, पिड़ावा

अध्यक्ष
ज्ञानचन्द जैन, एडवोकेट,
लश्कर

स्वागताध्यक्ष
अजित जैन सर्राफ,
दौलतगंज

महामंत्री
महेन्द्रकुमार जैन,
ग्वालियर

संयोजक
अजितकुमार जैन 'अचल'
ग्वालियर

संयुक्ताध्यक्ष
श्यामलाल जैन विजयवर्गीय
लश्कर

सम्पर्क-सूत्र : श्री सुरेन्द्रकुमार नरेन्द्रकुमार जैन, फालका बाजार, ग्वालियर (म.प्र.) – फोन

आयोजक : श्री आदिनाथ दि. जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव समिति,

नोट – कृपया इस विज्ञापन को जहाँ से स

हावीराय नमः !! अपूर्व धर्मलाभ लीजिये !!!

त ऐतिहासिक नगरी ग्वालियर (म.प्र.) में

ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव

रविवार, 19 जनवरी 2003 तक)

फूलबाग मैदान, ग्वालियर (म.प्र.)

) फालका बाजार, लश्कर, ग्वालियर (म.प्र.) फोन - (0751) 572179, 426709

थ दि. जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं गजरथ महोत्सव का भव्य आयोजन किया जा रहा है। इस मनोहारी 4 फुट ऊँची पद्मासन प्रतिमा को स्वर्ण जड़ित भव्य वेदी पर गजरथ महोत्सवपूर्वक विराजमान सपरिवार इष्ट मित्रों सहित पधारकर धर्मलाभ लें एवं लोकातीत जीवन का निर्माण करें।

र्देशक –ब्र. अभिनन्दनकुमारजी शास्त्री, खनियांधाना
पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा, इन्दौर
पण्डित अशोककुमारजी लुहाड़िया, अलीगढ़

ल तीर्थंकर का जन्माभिषेक कर पुण्यलाभ अवश्य लेवें

रत्न कलश	21,000/-	**वंदना कलश**	1,100 /-
त्रय कलश	11,000/-	**समयसार कलश**	500/-
र्ण कलश	5,100/-	**घटयात्रा (वेदी शुद्धि हेतु)**	
त कलश	3,100/-	**भावना कलश**	300/-

सह-संयोजक
पं. सुनीलकुमार शास्त्री,
मुरार

कोषाध्यक्ष
सरोजकुमार जैन,
ग्वालियर

न-325179

परामर्शदाता
पं. उत्तमचन्दजी जैन
करहियावाले, ग्वालियर

ग्वालियर (म.प्र.)

मांगलिक कार्यक्रम

14 जनवरी - रात्रि में माता के 16 स्वप्नों का प्रदर्शन।

15 जनवरी - **गर्भ कल्याणक** – माता व अष्ट देवियों की मार्मिक तत्त्वचर्चा।

16 जनवरी - **जन्मकल्याणक** का विशाल जुलूस, जन्माभिषेक, हेलीकॉप्टर से इन्द्रों द्वारा पुष्पवृष्टि। रात्रि में 45' x18' का सुन्दर मणिमय पालना झूलन।

17 जनवरी - **तपकल्याणक** – नीलांजना का मनोहारी नृत्य, राजा ऋषभदेव का वैराग्य, स्वर्गों से विमानों द्वारा लोकान्तिक देवों का आगमन, वैराग्य की अनुमोदना, पालकी उठाते समय राजा व देवों की मार्मिक चर्चा, वनगमन, दीक्षा-विधि।

18 जनवरी - **ज्ञानकल्याणक** – प्रातः मुनि ऋषभदेव का आहार एवं दोपहर समवशरण रचना व दिव्यध्वनि प्रसारण।

19 जनवरी - **मोक्षकल्याणक** – कैलाश पर्वत से भगवान का निर्वाण, गजरथ की फेरी, जिनमंदिर में श्रीजी विराजमान।

विशेष – प्रत्येक दिन प्रख्यात विद्वानों के शास्त्र प्रवचन का लाभ।

ब देख सकें, ऐसे सार्वजनिक स्थान पर लगा देवें।

तत्त्वचर्चा

समयसार का सार 59

गतांक से आगे

– डॉ॰ हुकमचन्द भारिल्ल

यदि मैं अपनी तरफ से यह कहूँ कि वैद्य जहर खाए और मरे नहीं तथा कोई शराब पिये और नशा चढ़े नहीं, तब क्या इसे कोई स्वीकार करेगा ? इसीप्रकार 'वैद्य जहर खाने से मरते नहीं हैं' – ऐसा समयसार में लिखा है, इस आधार पर क्या कोई जहर खाने के लिए तैयार होगा ?

यद्यपि वैद्य के जहर खाने और अरतिभाव से शराब पीने के ये दोनों उदाहरण असंगत प्रतीत होते हैं; तथापि वे असंगत नहीं हैं; क्योंकि जहर खाने का आशय जहर से बनी हुई दवाईयाँ पीने से है और दवा के रूप में ही शराब पीने की बात है।

बच्चों के पेट में कीड़े हो जाते हैं; तो माताएँ बाजार से कीड़े मारने की दवा लाती हैं। कीड़े मारने की दवा भी तो जहर ही है। बहुत सी दवाईयाँ संखिया से, साँप के जहर से बनती है; लेकिन उनसे बीमारियाँ ठीक होतीं हैं, कोई मरता नहीं है।

संस्कृत व्याकरण में विद् धातु का ज्ञान अर्थ में प्रयोग होता है अर्थात् जो वैद्य अर्थात् जानकार है, वह बहुत समझदारी पूर्वक शरीर को नुकसान नहीं हो और कीटाणुओं से उत्पन्न बीमारियाँ नष्ट हो जांये– ऐसी दवाईयाँ देता है। इसलिए वैद्य खाये तो वैद्य नहीं मरे और वैद्य जिसको दे वह भी नहीं मरे, 'वैद्य जहर खाए और मरे नहीं' इस पंक्ति का यही आशय है।

आत्मख्याति टीका में अमृतचन्द्राचार्य ने 'अमोघ विद्या' शब्द का प्रयोग किया है। अमोघ विद्या के सामर्थ्य से वैद्य के पास ऐसी विद्या है कि जहर आपको मार नहीं पाये और बीमारी को मार दे। इसका अर्थ यह है कि उसे जहर दिया तो जाता है; लेकिन वह बहुत ही उचित मात्रा में, समय पर एवं विधिपूर्वक दिया जाता है। ऐसे ही ज्ञानी यदि उपभोग भी करते हैं तो वे समझपूर्वक भूमिका अनुसार ही करते हैं।

यहाँ यह समझना अत्यंत आवश्यक है कि यहाँ किन भोगों को समाविष्ट किया गया है ?

प्रथम तो, जिस गुणस्थान में वह ज्ञानी है, उस गुणस्थान की भूमिका में जो भोग सम्भव है; वे ही यहाँ समाविष्ट हैं। दूसरे, वे भी सीमित मर्यादा में हैं। तीसरे, जैसे वैद्य बीमारी को रोकने के लिए विधिपूर्वक जहर खाता है; लेकिन वह जहर अरुचिपूर्वक खाता है; उसीप्रकार बनारसीदासजी ने ज्ञानी के संदर्भ में लिखा है कि ज्ञानी उदयवश भोग भोग रहा है।

इसप्रकार अमृतचन्द्राचार्य ने 'अमोघ विद्या के बल से वैद्य जहर खाता है' – इस बात को समझाया है।

दूसरा असंगत प्रतीत होनेवाला उदाहरण है शराब पीने का। लोगों को ऐसा कहते हुए सुना गया है कि 'मुझे नशा चढ़े' इस भावना से जो शराब पीते हैं, उन्हें नशा अधिक चढ़ता है; लेकिन 'मुझे नशा नहीं चढ़े, डॉक्टर ने दवाई के रूप में दिया है, इसलिए पीना है।' इसप्रकार जो व्यक्ति नशा नहीं चाहते हैं, उन्हें नशा कम चढ़ता है। फिर भी ऐसा कदापि नहीं माना जा सकता कि कोई अरतिभाव से शराब पिए और उसे नशा चढ़े ही नहीं, उसपर शराब का असर हो ही नहीं। इसप्रकार का विकल्प लोगों को बना ही रहता है।

अमृतचन्द्राचार्य ने आत्मख्याति टीका में मात्र 'अरुचिभाव से' यही तर्क दिया; परन्तु जयसेनाचार्य को यह तर्क पूर्णतः सन्तुष्ट नहीं कर सका। तब उन्होंने अपनी लिखी टीका में इसे और अधिक विस्तार से विश्लेषित किया।

जयसेनाचार्य ने लिखा कि उस शराब में ऐसी दवाई मिलाकर पीते हैं कि जिससे नशा चढ़े नहीं। नशा निरोधक दवाई मिलाकर शराब पीते हैं तो उन्हें नशा नहीं चढ़ता है।

कर्मोदय के वश भोग भोगनेवाले वैरागियों को उनका वैराग्य बंध निरोधक दवा के स्थान पर है।

इसप्रकार स्वयं आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने 'ज्ञान की सामर्थ्य और वैराग्य के बल से' इस बात को समझाने के लिए पृथक्–पृथक् उदाहरण दिए हैं। इन उदाहरणों के माध्यम से यह सहज ही स्पष्ट हो गया है कि चतुर्थगुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि को भोग भोगते हुए भी ज्ञान की सामर्थ्य और वैराग्य के बल के कारण बंध नहीं होता है; अपितु निर्जरा ही होती है।

यद्यपि आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने करणानुयोग की दृष्टि से इस विषय का विस्तार से विश्लेषण नहीं किया है; तथापि करणानुयोग के शास्त्रों के अनुसार इस विषय का संक्षिप्त स्पष्टीकरण इसप्रकार है।

चतुर्थगुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि ज्ञानी के मिथ्यात्वादि 41 प्रकृतियाँ नहीं बंधतीं। यदि क्षयोपशम सम्यग्दर्शन है तो सत्ता में पड़ी हुईं मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी आदि सर्वघाति प्रकृतियाँ देशघाति होकर उदय में आ–आ कर चल, मल, अगाढ दोष उत्पन्न कर खिर जायेंगी और उक्त प्रकृतियों का नया बंध नहीं होगा।

वस्तुतः बात यह है कि जिस गुणस्थान में जितनी प्रकृतियों की बंधव्युच्छुत्ति हो जाती है; वे आगे के गुणस्थानों में नहीं बंधतीं हैं। चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि के मिथ्यात्वादि अत्यन्त खतरनाक 41 प्रकृतियाँ तो बंधती ही नहीं हैं; शेष जो प्रकृतियाँ बंधती हैं; वे उनकी तुलना में नगण्य ही हैं। अतः उनकी उपेक्षा करके, उन्हें गौण करके ही यह कथन किया गया है।

फिर कोई पूछता है कि हम यह कैसे मान सकते हैं कि ज्ञानी विषयों का सेवन करते हुए भी असेवक है ? इसका समाधान आचार्य इस गाथा के माध्यम से व्यक्त करते हैं –

सेवंतो वि ण सेवदि असेवमाणो वि सेवगो कोई।
पगरणचेट्ठा कस्स वि ण य पायरणो त्ति सो होदि।।197।।

जिसप्रकार किसी व्यक्ति के किसी प्रकरण की चेष्टा होने पर भी वह प्राकरणिक नहीं होता और चेष्टा से रहित व्यक्ति प्राकरणिक होता है; उसीप्रकार कोई व्यक्ति विषयों का सेवन करता हुआ भी सेवक नहीं होता है और कोई व्यक्ति सेवन नहीं

करता हुआ भी सेवक होता है।

यद्यपि खान–पान आदिक की क्रियाएँ करते हुए दिखता है; फिर भी उन क्रियाओं का सेवन नहीं कर रहा है – यह समझ में नहीं आता है। माता बालक को पीट रही है; लेकिन फिर भी वह नहीं पीट रही है – यह कैसे समझ में आये ? इसकी विडियो फिल्म भी बनाकर दिखा सकते हैं। वह भोग सेवन कर रहा है, उसकी फिल्म बनाकर भी दिखा सकते हैं; फिर भी तुम कहते हो कि वह भोगों का सेवन नहीं कर रहा है।

अरे भाई ! आचार्य यहाँ यह कह रहे हैं कि द्रव्यलिंगी मुनि पाँच इन्द्रियों के भोगों का सेवन नहीं कर रहे हैं; फिर भी वे पाँच इन्द्रियों के भोगों के सेवनकर्ता हैं। चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि पाँच इन्द्रियों के भोगों का सेवन कर रहा है, फिर भी वह उनका सेवनकर्ता नहीं है। वह प्रकरण की चेष्टा में लगा हुआ है, फिर भी वह प्राकरणिक नहीं होता है।

'प्रकरण की चेष्टा में लगा हुआ है फिर भी प्राकरणिक नहीं होता है' – इसे हम इस उदाहरण से समझ सकते हैं –

लड़की का पिता आराम से गद्दी पर बैठता है। उसके मित्र उससे कहते हैं कि भाईसाहब ! आप तो यहीं विराजो; क्योंकि बार–बार लोग आपसे मिलने आयेंगे तो हम आपको कहाँ–कहाँ ढूँढेंगे और यदि हमें आपसे कोई काम हो तो भी हम आपको कहाँ ढूँढेंगे ? आपने हमें जो काम सौंपा है, उसके बारे में आप नहीं हों तो हम पूछेंगे किससे ? आप तो यहाँ टेलीफोन के पास गद्दी पर बैठिए। आप मात्र आदेश दीजिए, हम सब काम करनेवाले हैं।

अब उसके मित्र काम कर रहे हैं; परन्तु शादी के काम करने का कर्त्ता कौन है ? उसके लाभ–हानि का जिम्मेदार कौन है ? उसके बंध, निर्जरा का जिम्मेदार कौन है ?

उक्त प्रकरण में जो कुछ नहीं कर रहा है, वह उसका कर्त्ता है, वह उसे अपना कार्य मानता है। वह कहता है कि मेरी बेटी की शादी है, यह मेरा कार्य है – इसे ही प्राकर्णिक कहते हैं। जो प्रकरण से संबंधित व्यक्ति है, वही इसका प्राकरणिक है। उसे ही बंध होगा; उसे ही लाभ–हानि होगी। जो इस प्रकरण की चेष्टा में लगे हुए हैं; उन्हें कोई बंध होनेवाला नहीं है, लाभ–हानि होनेवाली नहीं है।

ऐसे ही वे सेवन करनेवाले सम्यग्दृष्टि कर्म के उदय से प्रकरण की चेष्टा में लग रहे हैं; परन्तु वह प्राकरणिक नहीं है; अपितु वह द्रव्यलिंगी प्राकर्णिक है, जो भोगों से कोसो दूर है। वे द्रव्यलिंगी कुछ नहीं करते हैं; लेकिन उनकी मर्जी के बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता है। अतः वे प्राकर्णिक हैं।

क्या द्रव्यलिंगी यह गाथा नहीं पढ़ते होंगे ?

अरे भाई ! वे तो यह कहते हैं कि यह ग्रन्थ गृहस्थों को नहीं पढ़ना चाहिए। हम कहते हैं कि मुनियों को नहीं पढ़ना चाहिए – ऐसा तो यहाँ नहीं लिखा है न ! उन्हें तो पढ़ना ही चाहिए। 'ये मेरा नहीं है, मेरा इससे कोई संबंध नहीं है। ये मेरा परिग्रह नहीं है'–ऐसा कहकर जगत को धोखा दिया जा सकता है; लेकिन कुन्दकुन्दाचार्य अमृतचन्द्राचार्य जयसेनाचार्य, समयसार, वस्तुस्वरूप, सर्वज्ञ परमात्मा एवं अपनी आत्मा को धोखा नहीं दिया जा सकता।

भले ही द्रव्यलिंगी कुछ भी उपभोग करता दिखाई नहीं देता है; फिर भी उसमें उस कार्य के प्रति एकत्व, ममत्व, कर्त्तृत्व एवं भोक्तृत्व विद्यमान हैं; इसलिए वह कुछ नहीं करता हुआ भी सबकुछ कर रहा है।

ये लोग, जहाँ कोई आवश्यकता ही नहीं है; पहले से ही सैकड़ों मन्दिर हैं; ऐसे तीर्थ स्थानों पर मंदिरों का निर्माण कराके अपना नाम लिखाते हैं।

यदि देवदर्शन के लिए ही मंदिर बनाना होता तो क्या सम्मेदशिखर में मंदिरों की कमी है ? भारतवर्ष में ऐसे कई गाँव हैं, शहर हैं, जहाँ हजारों जैन रहते हैं; लेकिन देवदर्शन के लिए मंदिर नहीं बनवा पाते हैं। यदि वहाँ मंदिर बन जावे तो हजारों लोग प्रतिदिन देवदर्शन करेंगे; लेकिन ये तो जहाँ कभी कोई गया ही नहीं हो – ऐसी टेकड़ी पर मंदिर बनाना चाहते हैं, जिससे इसका नाम हो।

इसप्रकार ये प्राकरणिक बने रहते हैं; परन्तु ज्ञानी सम्यग्दृष्टि जीव उसका सेवन करते हुए भी असेवक ही हैं अर्थात् वे उसमें एकत्व, ममत्व, कर्त्तृत्व व भोक्तृत्व नहीं रखते हैं; अतः असेवक ही हैं।

वस्तुतः देखा जाय तो ज्ञानी सेवन करता ही नहीं है, वह सेवन करता दिखाई देता है; लेकिन वह सेवन नहीं करता है; क्योंकि सम्यग्दृष्टि में नियम से ज्ञान और वैराग्य शक्ति होती है; लेकिन वह हमें दिखाई नहीं देती है।

जब मैं अशोकनगर में था; तब वहाँ एक मेरे मित्र मेरे प्रवचन के प्रतिदिन के श्रोता थे। जब भी प्रवचन में कोई नई बात आती थी तो उनका बंधा हुआ एक स्थायी प्रश्न रहता था कि – 'हमने तो ये शास्त्र में कहीं देखा ही नहीं है।' तब मैं भी सदा एक ही उत्तर देता था कि आपने अभी तक शास्त्र देखे ही कितने हैं ? आपने शास्त्रों में यह बात नहीं देखी तो इसमें शास्त्रों का क्या दोष है ? लो, अब हम तुम्हें शास्त्र दिखा रहे हैं न !

जिनवाणी में है; लेकिन हमने देखा नहीं, हमने सुना नहीं है; यह गलती किसकी है ? हमारी; लेकिन हमारा 'स्वर' ऐसा होता है कि हमारी तो कोई गलती नहीं है और सारी गलती या तो शास्त्र लिखनेवालों की है या शास्त्र सुनानेवालों की।

अरे भाई ! तुमने नहीं सुना, यह तो तुम्हारे दिमाग या कानों का दोष है, तुमने नहीं पढ़ा यह भी तुम्हारा ही दोष है, वस्तु के स्वरूप में तो कोई दोष है नहीं।

तब यदि कोई प्रश्न करे कि हमने तो बहुत से सम्यग्दृष्टि देखे हैं, जिनमें वैराग्य और ज्ञान था ही नहीं। तब आचार्य कहते हैं कि या तो वे सम्यग्दृष्टि नहीं होंगे या तुम्हें सम्यग्दर्शन की पहचान नहीं है। जो सम्यग्दृष्टि होंगे, उनमें अनिवार्यरूप से ज्ञान और वैराग्य होता ही है और फिर भी यदि तुम्हें दिखाई नहीं देता है तो यह तुम्हारा ही दोष है।

अब सम्यग्दृष्टि ज्ञानी जीवों की स्थिति कैसी होती है इसकी चर्चा अगले प्रकरण में होगी। **(क्रमशः)**

रजिस्ट्रेशन आर. एन. आई. 31109/77

गोष्ठी सानन्द सम्पन्न

जयपुर : यहाँ श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के प्रांगण में दिनांक 8 दिसम्बर 2002 को दशम रविवारीय विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया। गोष्ठी का विषय 'क्रमबद्धपर्याय : एक अनुशीलन' रखा गया। अध्यक्षीय उद्‌बोधन के रूप में डॉ. नरेन्द्रकुमारजी शास्त्री, जयपुर ने छात्रों को इस विषय को गंभीरता से समझने हेतु प्रेरित किया। प्रथम पुरस्कार अनन्तवीर जैन ने तथा द्वितीय पुरस्कार राहुल जैन बिनौता व जितेन्द्र जैन खड़ैरी ने प्राप्त किया। गोष्ठी का संचालन चैतन्य सातपुते ने एवं संयोजन जितेन्द्र राठी ने किया। **– मनोज जैन, अभाना**

उपकार स्मरण दिवस सम्पन्न

डूंगरपुर (राज.) : यहाँ श्री आदिनाथ दि. जैन चैत्यालय के प्रांगण में दिनांक 27 नवम्बर को पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की पुण्यतिथि को उपकार स्मरण के रूप में मनाया गया।

श्री राजेशजी जैन ने पूज्य गुरुदेवश्री के चित्र पर माल्यार्पण किया। सभा को सर्वश्री बादामीलालजी, पवनकुमारजी एवं देवेन्द्रकुमारजी ने संबोधित किया। पण्डित ऋषभकुमारजी शास्त्री ने गुरुदेवश्री के जीवन एवं उनकी देन पर विस्तृत प्रकाश डाला। इस अवसर पर समाज प्रमुख श्री रमनलालजी एवं श्री सूरजमलजी ने स्थानीय पण्डित लक्ष्मीचन्दजी का सम्मान किया। श्री देवीलालजी ने पाठशाला के बच्चों को पुरस्कार देकर प्रोत्साहित किया। सभा का संचालन श्री शोभालालजी जैन ने एवं संयोजन श्री लक्ष्मीचन्दजी जैन ने किया।

श्री धनकुमार जैन शास्त्री को पीएच.डी की उपाधि

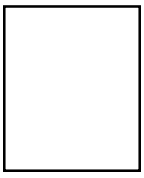

श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय जयपुर के भूतपूर्व स्नातक श्री धनकुमारजी जैन शास्त्री को राजस्थान विश्व-विद्यालय जयपुर ने डॉ. शीतलचन्द जैन के निर्देशन में लिखे गये शोधप्रबन्ध **आचार्य कुन्दकुन्द के साहित्य में तत्त्वों का समीक्षात्मक अध्ययन** विषय पर पीएच.डी. (विद्यावारिधि) की उपाधि प्रदान की; एतदर्थ महाविद्यालय परिवार की ओर से उन्हें हार्दिक बधाई!

पाठशाला निरीक्षण

नवम्बर माह में श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जयपुर के छात्र विद्वान पं. विवेक सातपुते एवं पण्डित अरुणजी मौ द्वारा पश्चिम महा. के फलटन, भिगवन, अकलूज, सावदा, चिंचवडपुणे, नातेपुते, पुणे, लासुर्णे, शेडवाड, सांगली, औरंगाबाद, पंढरपुर, वैराग आदि स्थानों की पाठशालाओं का निरीक्षण किया गया।

निरीक्षण के दौरान सभी स्थानों पर प्रातः, दोपहर एवं सायंकाल बालकक्षा, प्रौढकक्षा तथा प्रवचनों का आयोजन किया। अनेक स्थानों पर सांस्कृतिक कार्यक्रम तथा कुछ स्थानों पर विधान आदि के द्वारा समाज में महत्ती धर्म प्रभावना हुई। आप दोनों ने समाज को आधुनिक जीवन में पाठशालाओं का महत्त्व समझाते हुए उनके संचालन हेतु योग्य निर्देश दिए।

वैराग्य समाचार

1. तलेगांव (महा.) निवासी श्रीमती विमलबाई बालकृष्ण भाकरे का देहावसान हो गया है। आप बहुत ही शांतस्वभावी एवं जैनधर्म में दृढ़ आस्था रखनेवाली महिला थीं। आपकी स्मृति में जैनपथप्रदर्शक समिति एवं वीतराग-विज्ञान को 202 रुपये प्राप्त हुये हैं; एतदर्थ धन्यवाद !

2. गुना (म.प्र.) निवासी श्री मांगीलाल जैन का 85 वर्ष की आयु में दिनांक 27 नवम्बर को समभाव पूर्वक देहावसान हो गया है। आप दृढ़ श्रद्धानी, सरल हृदय एवं मुमुक्षु मण्डल के वरिष्ठतम सदस्यों में प्रमुख थे। आपकी पूज्य कानजीस्वामी के प्रति अगाध श्रद्धा थी। आप अनेकों बार सोनगढ़ जाते रहते थे। **– बाबूलाल बांझल**

3. इन्दौर निवासी श्रीमती माणकबाई पाण्ड्या का दिनांक 21 नवम्बर 2002 को समताभावपूर्वक देहावसान हो गया है। आप एक कर्मठ-निर्भीक, धर्मपरायण आत्मार्थी महिला थीं। विगत 42 वर्षों से आप महिला मण्डल मारवाडी मंदिर का अखण्ड नेतृत्व करती रहीं। इनकी स्मृति में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट को 5000 रुपये तथा वीतराग-विज्ञान एवं जैनपथप्रदर्शक को 1000 रुपये प्राप्त हुये हैं; एतदर्थ धन्यवाद !

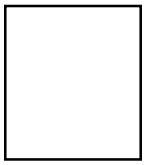

4. राजस्थान जैन सभा के मंत्री श्री महेन्द्रकुमारजी पाटनी, जयपुर के पिता श्री भंवरलालजी पाटनी का दिनांक 10 दिसम्बर 2002 को स्वर्गवास हो गया है। आप टोडरमल स्मारक भवन की सभा के बरसों से नियमित श्रोता थे। टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा संचालित गतिविधियों में आपका महत्त्वपूर्ण योगदान रहता था। साथ ही आप समाज की अनेक महत्त्वपूर्ण संस्थाओं के पदाधिकारी रहे ।

5. चन्देरी (गुना) निवासी बाबूलाल जैन 'मुखिया' की धर्मपत्नी श्रीमती शांतिबाई का दिनांक 1 दिसम्बर को देहावसान हो गया है। आप धार्मिक परिवार की महिला थीं तथा यथासमय जयपुर शिविर में धर्मलाभ लेने हेतु आया करती थीं।

दिवंगत आत्मायें शीघ्र अभ्युदय को प्राप्त हों – यही मंगल कामना है।

जैनपथप्रदर्शक (पाक्षिक) **दिसम्बर (द्वितीय) 2002**
आई. आर. / R. J. **3002/02**

प्रति,

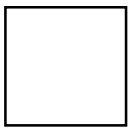

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.
प्रबन्ध सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा जयपुर**, एम.ए. (जैनविद्या एवं तुलनात्मक धर्मदर्शन)
प्रकाशक एवं मुद्रक : **ब्र. यशपाल जैन** द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., एम. आई. रोड, जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, ए-4, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो कृपया निम्न पते पर भेजें –
ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
फोन : (0141) 2705581, 2707458
तार : त्रिमूर्ति, जयपुर **फैक्स :** 2704127